International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 23-02-2026, Accepted: 25-03-2026, Published: 09-04-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 38-41

श्रीलाल शुक्ल का 'बिस्रामपुर का संत': सत्ता, संतत्व और समाज का त्रिकोण

देवेन्द्र सिंह सोलंकी[1], डॉ. रामकृष्ण शर्मा[2]
[1] शोधार्थी, हिन्दी, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान, भारत
[2] शोध निर्देशक, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान, भारत

सारांश
यह शोध–पत्र श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'बिस्रामपुर का संत' में ग्राम्य जीवन की विडम्बनाओं, सत्ता–संरचना की जटिलताओं और संतत्व की पारंपरिक अवधारणाओं पर गहन प्रहार करता है। इस कृति में स्पष्ट किया गया है कि जब संतत्व का आदर्श सत्ता–लिप्सा और स्वार्थपरक प्रवृत्तियों से प्रभावित हो जाता है, तब वह लोकमंगल का साधन न रहकर शोषण, पाखंड और अवसरवादिता का उपकरण बन जाता है। लेखक ने तीखे व्यंग्य के माध्यम से यह उद्घाटित किया है कि धर्म और राजनीति का गठजोड़ किस प्रकार समाज को नियंत्रित करने तथा जनता को भ्रमित करने का हथियार बन सकता है।
यह उपन्यास केवल एक साहित्यिक रचना भर नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ का जीवंत चित्रण है, जो पाठक को धर्म–सत्ता की विडम्बनाओं और लोकतांत्रिक व्यवस्था की जटिलताओं पर पुनर्विचार करने को प्रेरित करता है। इस दृष्टि से 'बिस्रामपुर का संत' हिन्दी साहित्य में व्यंग्य–परंपरा की अनमोल धरोहर है, साथ ही यह सामाजिक–राजनीतिक विमर्श का भी एक सशक्त और विचारोत्तेजक दस्तावेज़ सिद्ध होता है।

मूल शब्दः संत, राजनीति, अवसरवादिता, विडम्बना, विसंगति, ग्रामदान, सामाजिक परिवेश, आंदोलन, सत्ता संरचना, महामहिम राज्यपाल

हिन्दी उपन्यास साहित्य में श्रीलाल शुक्ल का नाम उस रचनाकार के रूप में लिया जाता है, जिन्होंने भारतीय समाज की जटिलताओं, राजनीतिक विडम्बनाओं और सामाजिक विसंगतियों को गहन यथार्थबोध के साथ व्यंग्यात्मक शैली में चित्रित किया है। 'राग दरबारी' की लोकप्रियता के बाद उनके द्वारा रचित उपन्यास 'बिस्रामपुर का संत' भी ग्राम्य जीवन की विकृतियों तथा बदलते सामाजिक परिवेश का सशक्त दर्पण है। यह उपन्यास केवल गाँव की कथा न होकर उत्तर भारत की उन परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करता है, जहाँ परम्पराएँ टूट रही हैं, मूल्य तिरोहित हो रहे हैं और आदर्श खोखले साबित हो रहे हैं।
शुक्लजी ने इस उपन्यास में भूदान आंदोलन, सर्वोदयी आदर्शों और ग्राम्य पुनर्निर्माण की योजनाओं आदि की आड़ में पनपते स्वार्थ, अवसरवाद और भ्रष्ट मानसिकता को उजागर किया है। बिस्रामपुर गाँव यहाँ प्रतीकात्मक रूप से उस समूचे भारतीय ग्रामीण जीवन का प्रतिनिधि बन जाता है, जो सामाजिक और राजनीतिक प्रयोगों की प्रयोगशाला बनकर रह गया। इस दृष्टि से 'बिस्रामपुर का संत' केवल साहित्यिक कृति ही नहीं, बल्कि भारतीय लोकतंत्र और ग्राम्य यथार्थ पर गहन व्यंग्यात्मक टिप्पणी भी है। उपन्यास के मुख्य पात्र महामहिम राज्यपाल कुंवर जयंती प्रसाद सिंह है। जो सत्ता की आड़ में संत बनकर सुंदरी के प्रेम में एवं कामवासना में खोए रहते हैं।
हिन्दी उपन्यास परंपरा में ग्राम्य जीवन एवं ग्राम्य संस्कृति के बहुआयामी चित्रण का विशेष महत्व है। आजादी के बाद एक ओर जहां यथार्थवादी धारा ने समाज की विडम्बनाओं को उद्घाटित किया है, वहीं व्यंग्य–प्रधान साहित्य ने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विडम्बनाओं को भेदते हुए सत्ता–संरचनाओं के गहन अंतर्विरोधों को उजागर किया है। श्रीलाल शुक्ल का यह उपन्यास 'बिस्रामपुर का संत' इसी व्यंग्य परंपरा का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। इस उपन्यास में लेखक ने ग्रामीण समाज के भीतर राजनीतिक–सांस्कृतिक शक्तियों, धार्मिक आडंबर तथा संतत्व के विडम्बनात्मक रूप को उभारते हुए यह प्रतिपादित किया है कि भारतीय ग्राम्य संरचना केवल परंपराओं की वाहक नहीं, बल्कि सत्ता–लोलुपता और पाखंड का भी उपजाऊ स्थल है। असत्य का पाखंड रचना राजनेताओं के चरित्र का अभिन्न अंग बन गया है इसी पाखंड का इनाम कुंवर जयंती प्रसाद को भी मिलता है। लेखक कहते हैं कि "तभी कुँवर जयंती प्रसाद सिंह को संयुक्त राष्ट्रसंघ में भेजे जाने का मौका मिला। शायद भूदान यज्ञ में यह उनके दान की ख्याति का फल था। उन्हें तीन विशिष्ट व्यक्तियों के एक प्रतिनिधि मंडल में शामिल किया गया था।"[1]

श्रीलाल शुक्ल का साहित्यिक अवदान

श्रीलाल शुक्ल (1925–2011) को हिन्दी साहित्य में व्यंग्य का प्रतिनिधि माना जाता है। उनका राग दरबारी जहाँ शिक्षा और राजनीति की जटिलताओं का उद्घाटन करता है, वहीं बिस्रामपुर का संत धर्म और राजनीति के अंतर्संबंधों पर प्रहार करता है। शुक्ल जी के लेखन की विशिष्टता यह है कि वे मात्र व्यंग्यकार न होकर समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी विश्लेषण करते हैं। उनके पात्र, स्थितियाँ और घटनाएँ केवल हास्य उत्पन्न नहीं करतीं, बल्कि सामाजिक संरचना की परतों को भी अनावृत करती है। इस दृष्टि से शुक्ल का साहित्य भारतीय लोकतंत्र के ग्रामीण धरातल का जीवंत दस्तावेज़ है। नोबेल पुरस्कार से सम्मानित उपन्यासकार 'विलियम फाकनर' ने लेखक की तीन प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया है। "अनुभव, सूक्ष्म दृष्टि और कल्पनाशीलता।"[2] ये सभी विशेषताएं उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल में देखी जा सकती है।
नामवर सिंह ने शुक्ल जी की साहित्यिक रचनाधर्मिता एवं निष्पक्षता के संबंध में कहा है कि "श्रीलाल जी साहित्यकार की भूमिका को एक निष्पक्ष पर्यवेक्षक और वस्तुनिष्ठ जांचकर्ता के रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं।"[3] इस प्रकार श्रीलाल शुक्ल का साहित्य के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान रहा है।

कथा–संरचना और कथानक

बिस्रामपुर का संत का कथानक किसी एक घटना पर नहीं, बल्कि पूरे ग्राम्य जीवन की विसंगतियों पर केंद्रित है। बिस्रामपुर गाँव में संत की उपस्थिति केवल आध्यात्मिकता का प्रतीक नहीं, बल्कि वह सत्ता और प्रभाव का केंद्र भी है। गाँव के सामाजिक–राजनीतिक समीकरण संत की भूमिका के इर्द–गिर्द घूमते हैं। कथा में धर्म और राजनीति का सम्मिलन इस प्रकार

प्रस्तुत हुआ है कि पाठक को ग्रामीण समाज की जटिलताएँ गहरे स्तर पर समझ में आती हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में राजनीति एक अनिवार्य विमर्श बनकर उभरती है। किसी राष्ट्र की प्रगति अथवा अवनति की दिशा उसकी राजनैतिक परिस्थितियों पर ही टिकी रहती है। आज के परिवेश में राजनीति ऐसा सशक्त तत्त्व है, जो व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामूहिक सामाजिक ढाँचे तक को गहरे रूप में प्रभावित करता है। सत्ता पर काबिज नेता ही नीतियों का निर्धारण करते हैं और उन्हीं के हाथों में प्रशासनिक संचालन निहित रहता है। यही कारण है कि सामाजिक व्यवस्था और व्यक्तिगत अस्तित्व दोनों उनके निर्णयों से संचालित होते हैं। किन्तु राजनीति अब केवल सेवा और त्याग का क्षेत्र न रहकर लाभ और अवसर का मंच बन चुकी है। राजनेताओं की गतिविधियों में छल, विरोधाभास और आडंबर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। चुनावी मंचों पर किए गए वादे सत्ता प्राप्ति के बाद व्यवहार में नहीं उतरते, जिससे कथनी और करनी का अंतर और भी स्पष्ट हो उठता है। गांव में आज भी धरती माता को पूजनीय माना जाता है। आदिकाल से भारत में धरती को माँ का दर्जा दिया गया है। उपन्यास में किसानों के हालात दयनीय है। भूदान आंदोलन की लहर जब ग्राम्य जीवन को अपनी चपेट में लेती है, तब सबसे अधिक प्रभावित वही लोग होते हैं जिनका अस्तित्व भूमि से जुड़ा होता है। गाँव की जमीन और उस पर आश्रित कृषक वर्ग किस प्रकार आंदोलनकारी उत्साह और सत्ता–नियंत्रित चालों के बीच पिस जाता है, इसका मार्मिक चित्रण इस कृति में मिलता है।

संपूर्ण शताब्दी के दौरान वे लोग भूमि–सुख से वंचित रहे, जिनकी पीठ पर हल का बोझ था और जिनकी हथेलियों में मुठिया थमी हुई थी। भूमि के स्वामित्व से दूर रखे गए ये कृषक श्रम और पसीना बहाते रहे, किन्तु परिणामस्वरूप उन्हें मिला केवल अभाव और असुरक्षा। भूदान का आदर्शवादी स्वरूप जहाँ लोक हितकारी दिखाया गया, वहीं व्यवहारिक स्तर पर यह किसानों के लिए शोषण और निराशा का कारण सिद्ध होता है।

यही यथार्थ श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'बिस्रामपुर का संत' में गहनता से उद्घाटित होता है। उपन्यास के पात्र और घटनाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि राजनीति ने किस प्रकार जनजीवन को अपने हितों की कठपुतली बना लिया है। संत जैसे चरित्रों की आड़ में व्यवस्था का विडंबनापूर्ण चेहरा सामने आता है, जहाँ आदर्शवाद केवल भाषणों तक सीमित रह जाता है और व्यवहारिक जीवन स्वार्थ तथा अवसरवादिता से संचालित होता है। इस प्रकार, यह कृति न केवल सत्ता–राजनीति की विडम्बनाओं को प्रकट करती है बल्कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में उभरते राजनीतिक विमर्श की गहरी संवेदना भी प्रदान करती है।

ग्रामीण समाज और राजनीति

'बिस्रामपुर का संत' में प्रस्तुत ग्राम का चित्रण केवल सर्वोदयी या ग्रामदान से निर्मित गाँव का आदर्श स्वरूप नहीं है, बल्कि उस आदर्श की विडम्बनापूर्ण परिणति का कटु यथार्थ भी है। उपन्यास में एक ऐसे गाँव का चित्र उभरा गया है जहाँ उसकी परम्पराएँ जर्जर हो चुकी हैं, जहां मूल्य अपनी जीवंतता को खो चुके हैं और सामाजिक मान मर्यादाएँ पूर्णतः खंडित एवं ध्वस्त हो गई हैं। जयंती प्रसाद के बड़े भाई रियासत के ताल्लुकेदार थे तथा 'राजा साहब' के नाम से जाने जाते थे। किन्तु वे गाँधीवादी विचार धारा के थे तथा आजादी की लड़ाई में अपना योगदान दे रहे थे तथा जेल भी गए थे। इसी से जयंती प्रसाद सिंह का नाम भी गाँधीवाद में जुड़ गया। "तभी, भूदान आंदोलन शुरू होने पर, कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह ने बड़े भाई के जेल–प्रवास के दौरान ग्रामदान की घोषणा की। राजनीतिक खेल में यह एक शानदार छक्का था। इसका सर्वोदयी कार्यकर्ताओं में ही नहीं, सरकारी तंत्र में भी वाजिब असर हुआ। उनकी साख बढ़ी, साथ ही खपत भी।"[4]

उपन्यास में कुँवर जयंती प्रसाद सिंह का कथन—"देखिए, इस मामले को आगे बढ़ाने में मेरी दिलचस्पी नहीं है... हम लोग यहाँ एक गाँधीवादी संस्था चला रहे हैं... हम नहीं चाहते कि यहाँ बदले की भावना पनपे"[5] यह दर्शाता है कि गाँधीवाद के नाम पर चलने वाले आंदोलन कितने खोखले सिद्ध हुए। अहिंसा और भाईचारे की आड़ में अपराधियों को संरक्षण दिया जाता है और न्याय को टालने की प्रवृत्ति सामने आती है। इस प्रकार उपन्यास गाँधीवादी दर्शन, भूदान आंदोलन और आदर्शवादी नारों की परतों के नीचे छिपी राजनीतिक चालों तथा सामाजिक सड़ांध को उजागर करता है। यही कारण है कि यह रचना कूटनीति और नैतिक विफलता के ठहराव की कथा प्रतीत होती है – चाहे वह राजनीतिक हो, कोई विचारधारा हो या कोई भौतिकवादी जीवन–शैली हो।

उपन्यास में सुख–सुविधाओं में जीवनयापन करने वाले एक ऐसे व्यक्तित्व का चरित्र चित्रण किया गया है जो आज के समय की वास्तविकता को उजागर करता है। महामहिम राज्यपाल कुंवर जयंती प्रसाद सिंह का चरित्र भी कुछ ऐसा ही है जो आज के सत्ताधारी व्यक्तियों में दिखाई देता है। विलायत से बैरिस्टर करके आए कुंवर जयंती प्रसाद सिंह के रहन–सहन एवं उनके व्यक्तित्व का चित्रण लेखक कुछ इस प्रकार से करते हैं– "....सुख–सुविधाओं में पला, विलायत से बैरिस्टर बनकर आया हुआ एक रईस। समाजवादी परंपरा वाले एक संपन्न पर तपस्वी परिवार का लाड़ला। हाई कोर्ट का सफल एडवोकेट। आचार्य विनोबा के आह्वान पर साधारण भूदान की जगह दो गाँवों का ग्रामदान करने वाला एक 'साधु राजा' (अपनी प्रशंसा में ऐसा विशेषण पढ़कर पहली बार अपने पर दया आयी, अपने से खीझ हुई!) संयुक्त राष्ट्र में देश का प्रतिनिधित्व करने वाला एक कुशल राजनयिक ! (पर मेरे लिए तो वहाँ एक शब्द बोलने का भी अवसर नहीं आया था! कैसी कुशलता और कैसा राजनय !) दो–दो समस्याग्रस्त राज्यों का भूतपूर्व राज्यपाल ! (पर मैं समस्याओं से घबराया हुआ था और वे अपने आप सुलझ रही थीं!) अपनी जीवन–संध्या में आज वह सब कुछ पीछे छोड़कर (पर अहंकार? उसे कहाँ पीछे छोड़ा है!) इस मामूली–सी सर्वोदयी संस्था में एक मामूली कार्यकर्ता की तरह रहने आया है! (यक़ीनन् ! कत्थई रंग का कीमती कमोड इसका गवाह है!) त्याग और संन्यास की भारतीय संस्कृति में आज भी कुछ ऐसा है जो कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह जैसे संवेदनशील व्यक्ति को ऐसे असाधारण मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। (तालियाँ!!)"[6] श्रीलाल शुक्ल के द्वारा राजनीति पर किया गया यह व्यंग्य वर्तमान समाज की राजनीति का नग्न चित्रण प्रस्तुत करता है। किस प्रकार सत्ता के बड़े पद पर बैठे हुए व्यक्ति सत्ता और पद का दुरुपयोग करके सरकारी सुख–सुविधाओं को अपने हित में उपयोग करते हैं, उसका वास्तविक रूप महामहिम राज्यपाल कुंवर जयंती प्रसाद सिंह के चरित्र में दिखाई देता है।

इसके साथ ही इस उपन्यास में मानवीय संबंधों और मानसिक प्रवृत्तियों का भी विश्लेषण मिलता है। पात्रों के भीतर दबी इच्छाएँ, अधूरी आकांक्षाएँ और अंतरंग संबंधों की असफलताएँ उन्हें एक प्रकार की मानसिक विलासिता में बाँध देती हैं। प्रेम प्रसंगों का अंधकार, घबराहट और अतृप्ति उनके जीवन का स्थायी हिस्सा बन जाता है। यही कारण है कि आधी शताब्दी बीत जाने के बाद भी वे अपने भीतर पलते दिवास्वप्न से मुक्त नहीं हो पाते। कुंवर जयंती प्रसाद सिंह जयश्री के साथ बिताए समय को याद करते हैं और वर्तमान में उसी जयश्री को वापस पाना चाहते हैं। जयश्री का विवाह हो जाता है किन्तु जयंती प्रसाद सिंह के मन की वे कामनाएं पुनः जाग्रत हो जाती है। जयश्री के द्वारा आशानुरूप प्रति उत्तर नहीं मिलने पर वे मन ही मन जयश्री के लिए कटू

वचन निकालते हैं। वे कहते हैं कि "मैं जल रहा हूं! एक मौन फुफकार मारी, फिर भी जयश्री का कुछ न बिगड़ा तो जी भर कर बद्दुआएं दीं, तू मेरी नहीं हुई तो तेरा यहां रहना मुझे गवारा नहीं। तू सात समुंदर पार चली जाए। तेरा दाम्पत्य जीवन तहस नहस हो जाये। तू पियक्कड़ किस्म की औरत के रूप में बदनाम हो। अब ज्यादा सहन नहीं होता...तेरी मौत हो जाए।"[7] इसी प्रकार की मानसिकता आज समाज के हर तरफ देखी जा सकती है। कई बार देखा जाता है कि युवतियों द्वारा किसी युवक के प्रेम को ठुकरा देने पर या प्रेम–प्रसंग का सामाजिक पर्दाफाश हो जाने पर उसे मौत के घाट उतार दिया जाता है।

किसानों की जमीन किसानों की होते हुए भी उनकी नहीं है। केवल नाम मात्र के लिए ये माना जाता है कि ये किसान की जमीन है। बल्कि किसान स्वयं अपनी जमीन पर मजदूरों की तरह काम करता है। साहूकारों एवं व्यवसायियों आदि द्वारा किसानों का भरपूर शोषण किया जाता है, जिससे वे जीवन भर उभर नहीं पाते। लेखक इस विषय पर कहते हैं कि "दरअसल, सहकारी खेती में यह होना ही था। खेती या तो किसान अपनी ज़मीन पर कर सकता है, या मज़दूर बनकर दूसरे की ज़मीन पर। तीसरा तरीका रूस के सामुदायिक फार्मों का है। पर वहाँ क्या हुआ है, मुझे नहीं मालूम। लेकिन सहकारी खेती इन दो में से, या इन तीनों में से कुछ भी नहीं है। किसान के लिए वह सिर्फ़ ऐसी ज़मीन है जो उसकी होते हुए भी उसकी नहीं है, या उसकी न होते हुए भी उसकी होने का भ्रम पैदा करती है; दरअसल वह सिर्फ भ्रष्ट कार्यकर्ताओं और उनसे भी ज़्यादा भ्रष्ट सरकारी कारकुनों की संपत्ति है।"[8]

संतत्व की विडम्बना और व्यंग्य

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में 'संत' का स्वरूप त्याग, लोक कल्याण और आध्यात्मिक ऊँचाइयों से जुड़ा रहा है। संतों की वाणी को सदैव मार्गदर्शनकारी माना गया, जिनका जीवन समाज के लिए आदर्श प्रस्तुत करता था। किंतु श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'बिस्रामपुर का संत' में यह आदर्श पूर्णतः विडम्बनात्मक स्वर ग्रहण कर लेता है। यहाँ का संत लोकहित की भावना से प्रेरित न होकर सत्ता के समीकरणों और निजी स्वार्थ का प्रवक्ता बन जाता है।

लेखक ने व्यंग्य को प्रमुख औज़ार बनाकर यह उद्घाटित किया है कि किस प्रकार धार्मिक आवरण ओढ़कर व्यक्ति समाज की चेतना को नियंत्रित करता है। संतत्व का मुखौटा पहनने वाला पात्र स्वयं को लोकनायक के रूप में प्रस्तुत करता है, जबकि उसकी गतिविधियाँ जनहित से अधिक व्यक्तिगत लाभ के इर्द–गिर्द घूमती हैं। यह विरोधाभास केवल पात्र–विशेष की आलोचना नहीं, बल्कि उस समूची प्रवृत्ति का पर्दाफाश है, जिसमें धर्म और राजनीति का गठजोड़ जनता को भ्रमित कर अपने हित साधने में संलग्न रहता है।

उपन्यास की यह व्यंग्यात्मक प्रस्तुति पाठक को सोचने पर विवश करती है कि संत की छवि, जो कभी निर्मलता और करुणा का प्रतीक मानी जाती थी, अब किस प्रकार राजनीतिक रणनीति और सामाजिक नियंत्रण का साधन बन गई है। शुक्ल की लेखनी इस प्रवृत्ति पर तीखा प्रहार करती है और यह दिखाती है कि तथाकथित संत–महात्मा किस तरह पाखंड का जाल बुनकर समाज को जकड़े रहते हैं। यही कारण है कि यह व्यंग्यात्मक चित्रण आज भी उतनी ही प्रासंगिकता लिए हुए है, जितनी उपन्यास के प्रकाशन काल में थी।

शुक्ल की भाषा व्यंग्यात्मकता से युक्त होते हुए भी सहज और संवादप्रधान है। आंचलिक शब्दावली का प्रयोग गाँव की वास्तविकता को मूर्त रूप देता है। संवादों में हास्य और विडम्बना के बीच गहन यथार्थ का उद्घाटन होता है। कथावाचन–शैली में कहीं–कहीं परिहास है, तो कहीं तीखा कटाक्ष। यही मिश्रण उपन्यास को साहित्यिक दृष्टि से विशिष्ट और अकादमिक विमर्श के लिए महत्त्वपूर्ण बनाता है।

'राग दरबारी' के तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में 'बिस्रामपुर का संत'

यदि श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'राग दरबारी' और 'बिस्रामपुर का संत' का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों कृतियाँ ग्राम्य जीवन की विसंगतियों और अंतर्विरोधों का उद्घाटन करती हैं। किन्तु दोनों की दृष्टि और केन्द्र भिन्न हैं। 'राग दरबारी' में शिक्षा, पंचायत व्यवस्था और स्थानीय राजनीति की धांधलियों को तीखे व्यंग्य के साथ प्रस्तुत किया गया है। वहाँ ग्राम समाज की जटिलताएँ हास्य–व्यंग्य के माध्यम से उभरती हैं, जो पाठक को ग्रामीण यथार्थ का अक्स दिखाने के साथ–साथ सत्ता और भ्रष्टाचार की गहरी परतें भी खोलती हैं।

इसके विपरीत, 'बिस्रामपुर का संत' धर्म और सत्ता के अंतर्संबंधों पर केन्द्रित है। यहाँ लेखक यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि किस प्रकार संतत्व का आवरण ओढ़कर व्यक्ति राजनीतिक शक्ति का संवाहक बन जाता है। धर्म की आड़ में जनसमूह को प्रभावित कर सत्ता प्राप्त करने की यह प्रवृत्ति समाज के लिए उतनी ही विडम्बनापूर्ण है जितनी खतरनाक। शुक्ल ने इस उपन्यास में धार्मिक आडंबर और राजनीतिक स्वार्थ के गठजोड़ को रेखांकित करते हुए उस विरोधाभासी स्थिति को उद्घाटित किया है, जिसमें लोकमंगल का आदर्श केवल वाणी तक सीमित रह जाता है और व्यवहार में उसका स्थान स्वार्थपरक प्रवृत्तियाँ ले लेती हैं।

'राग दरबारी' और 'बिस्रामपुर का संत' उपन्यासों में आए राजनीतिक चित्र का जिक्र करते हुए मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं कि "उन्हीं हंसों बगुलों की दास्तान है राग दरबारी। जिसमें जोर है, उसके पास लाठी है; अतः उसी की भैंस होगी के सिद्धांत का व्यंग्यात्मक प्रतिपादन करता हुआ, खोखले आदर्शों का मखौल उड़ाता हुआ अपना परचम लहराये हुए है। उसी पड़ाव से चलते हुये वे 'बिस्रामपुर का संत' तक आये हैं।"[9]

अन्य साहित्यिक व्यंग्यकारों यथा हरिशंकर परसाई या शरद जोशी की तुलना में शुक्ल की विशेषता यह है कि उनका व्यंग्य मात्र लेखकीय टिप्पणी या चुटकीले प्रसंगों तक सीमित नहीं रहता। उनके उपन्यास कथा–प्रधान हैं और उनमें संरचनात्मक गहराई के साथ पात्र–निर्माण की विशिष्टता दिखाई देती है। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ केवल तत्कालीन परिस्थितियों की आलोचना भर नहीं करतीं, बल्कि समाज, सत्ता और संस्कृति के गहन अंतर्संबंधों को भी उजागर करती हैं। इस प्रकार, दोनों उपन्यास अपने–अपने स्तर पर ग्रामीण यथार्थ को व्यंग्यात्मक दृष्टि से परखते हैं, किंतु उनकी केन्द्रीय चिंता और प्रस्तुति भिन्न मार्गों से पाठक को एक ही सत्य की ओर ले जाती है—व्यवस्था की विडम्बना और समाज की असहायता।

समकालीन संदर्भ

यद्यपि श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'बिस्रामपुर का संत' बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखा गया किन्तु उसकी प्रासंगिकता इक्कीसवीं शताब्दी में भी अक्षुण्ण बनी हुई है। धर्म और राजनीति का गठजोड़ आज भारतीय लोकतंत्र की धुरी के रूप में सामने आ रहा है। यह गठजोड़ केवल विचारधारा या नैतिक आग्रह तक सीमित नहीं रह गया, बल्कि सीधे–सीधे सत्ता–समीकरणों और चुनावी राजनीति का निर्णायक तत्व बन चुका है।

ग्रामीण परिदृश्य में साधु–संतों की उपस्थिति केवल धार्मिक आयोजनों तक ही नहीं, बल्कि चुनावी मंचों तक सक्रिय रूप में देखी जा सकती है। अनेक चुनावों में देखा गया है कि विभिन्न राजनीतिक दल धार्मिक नेताओं का समर्थन प्राप्त करने के लिए उनके मंच साझा करते हैं। साधु और बाबा सार्वजनिक सभाओं में मतदाताओं को संबोधित करते हैं, किसी विशेष दल या प्रत्याशी के पक्ष में मतदान की अपील करते हैं और इस प्रकार धर्म की

आस्था को राजनीतिक पूँजी में बदल देते हैं। हाल के वर्षों में उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और हरियाणा जैसे राज्यों में संत–समाज की चुनावी सक्रियता इसके ठोस उदाहरण प्रस्तुत करती है।

इस परिप्रेक्ष्य में 'बिस्रामपुर का संत' का कथानक आज भी उतना ही सार्थक और विचारोत्तेजक है। यह उपन्यास केवल अतीत की विसंगतियों का व्यंग्यात्मक चित्रण नहीं करता, बल्कि वर्तमान की विडम्बनाओं को भी समझने की दृष्टि प्रदान करता है। धर्म का आडंबर और सत्ता की भूख जब मिलकर जनता को प्रभावित करने का माध्यम बनते हैं, तब लोकतंत्र की जड़ें कमज़ोर पड़ती हैं। शुक्ल ने अपनी रचना में जिस प्रवृत्ति की आलोचना की थी, वह आज भी हमारे राजनीतिक परिदृश्य की ठोस सच्चाई के रूप में विद्यमान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीलाल शुक्ल – बिस्रामपुर का संत, राजकमल पेपरबैक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ संख्या – 46
2. राधा दीक्षित राग दरबारी का शैली वैज्ञानिक अध्ययन, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ संख्या – 33
3. श्रीलाल शुक्ल – जीवन ही जीवन, नामवर सिंह, पृष्ठ संख्या – 17
4. श्रीलाल शुक्ल – बिस्रामपुर का संत, राजकमल पेपरबैक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ संख्या – 85
5. श्रीलाल शुक्ल – बिस्रामपुर का संत, राजकमल पेपरबैक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2023
6. श्रीलाल शुक्ल – बिस्रामपुर का संत, राजकमल पेपरबैक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ संख्या – 90
7. अखिलेश (सं.) – श्रीलाल शुक्ल की दुनिया (बिस्रामपुर में दरबारी हूरें – मैत्रेयी पुष्पा), राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ संख्या – 62
8. श्रीलाल शुक्ल – बिस्रामपुर का संत, राजकमल पेपरबैक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ संख्या – 40
9. अखिलेश (सं.) – श्रीलाल शुक्ल की दुनिया (बिस्रामपुर में दरबारी हूरें – मैत्रेयी पुष्पा), राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ संख्या – 56